वेदों में चिकित्सा विज्ञान

पुष्पा मीना
व्याख्याता
संस्कृत विभाग
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

आदिकाल से मनुष्य त्रिविध दुखों की निवृति लगातार प्रयासरत रहा है क्योंकि दुःखों से निवृति ही मानव का परम ध्येय है।जिसके लिए वह प्राकृतिक उपादानों, जड़ी बूटियों, मंत्रो, औषधियों, तंत्र मंत्र,जादू टोना इत्यादि पर आश्रित रहा है।हम सभी भारतीयों की असीमिता की पहचान में वेदों की अति महत्वपूर्ण भूमिका है।वेद हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर तथा विभिन्न प्रकार के ज्ञान, विज्ञान, तकनीक, आचार, परम्परा के द्योतक हैं।वेदों मे ंविविध ज्ञान सन्निहित है। इसी अभिप्रयार्थ वेदों में चिकित्सा सम्बन्धित ज्ञान भी अति उन्नत अवस्था मे ंतथा प्राकृतिक उपायों के माध्यम से यत्र तत्र बिखरा पड़ा है।वेद का ही एक भाग आयुर्वेद भी उसका सहकारक है, जिसमे ंविभिन्न रोगों की अनेकों उपायों के माध्यम से एकांतिक व अत्यांतिक मुक्ति का मार्ग सफलतापूर्वक दर्शाया है।जब हम आयुर्वेद के उपायों का मूल खोजते है तो वेदों का ही सहारा लेना पड़ता है।क्यों कि वेदों में विविध प्रकार के रोगों और उनकी चिकित्सा सम्बन्धी प्रावधानों का भी उल्लेख मिलता है।

अर्थात वेद सभी प्रकार के चिकित्सा विज्ञान से परिपूर्ण सारगर्भित है।अतः हमें आज भी बडे–बडे रोगों के उपायों की खोज करने के लिए वेदो ंका सहारा लेने की अति आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : वेद, चिकित्सा, आयुर्वेद, औषधियाँ, मंत्र, वैदिकसूक्त

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का आधार वेदमूलक संस्कृति है जिसमें सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की भावना अनुस्यूत हैं। जीवन–मृत्यु, लोक–परलोक, कर्मफल, जरा, दुःख इत्यादि की समस्याओं व उनके समाधानों का पूर्ण प्रतिपादन करने वाले वैदिक साहित्य में चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान होना स्वभाविक हैं। मनुष्य सदैव त्रिविध तापों द्वारा पीड़ित रहता है आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक। अतः त्रिविध दुःखों की निवृति हेतु उपाय भी लगातार प्रयोग करता हैं। वेदों में यह चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान क्रमबद्ध नहीं हैं क्योंकि वैदिक संहिताएँ शताब्दियों के ज्ञान का संकलन है।

वेदों में चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान आदिम व जादू ओझाई और तार्किक दोनों प्रकार है ऐसा प्रतीत होता है कि अनुभवों और परीक्षणों द्वारा वैदिक आर्यो का चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान धीरे–धीरे तार्किक अवस्था की ओर गतिशील हो रहा था जिसकी अंतिम परिणति चरक व सुश्रुत संहिता में हुई।

सामान्यतः बीमारी का कारण पाप या किसी बुरी शक्ति का प्रकोप माना जाता था। इसे यन्त्रों, यज्ञ, पूजापाठ की सहायता से ठीक किया जाता था। वह ब्राह्मण वर्ग का पुनीत कर्त्तव्य था दूसरी ओर अर्थवेद चिकित्सा व शल्य क्रिया करने वाले चिकित्सा पुरोहितों का उल्लेख करता है। धर्म के साथ चिकित्सा शास्त्र को जोड़ने की परम्परा आयुर्वेद संहिता के समय तक बरकरार रही। आयुर्वेद को अथर्ववेद का 'उपांग' माना गया हैं। दूसरी ओर आयुर्वेद ऋग्वेद का एक भाग है 'उपवेद' कहा गया है। आयुर्वेद का आधार त्रिदोष का सिद्वान्त है जिस प्रकार प्रकृति त्रिगुणात्मक है शरीर भी त्रिगुणात्मक हैं। शरीर के ये तीनों गुण वात, पित्त, कफ नाम से जाने जाते हैं। जैसे दूध में घी व्याप्त है उसी प्रकार शरीर के प्रत्येक कण में ये तीनो दोष रहते हैं। शरीर के जिस भाग में जो दोष अधिक परिमाण में रहता हैं उसे उस द्वोष का स्थान कहते है। अतः नाभि से नीचे वायु का, नाभि के ऊपर गले तक मध्य भाग में पित्त और सिर में कफ का स्थान हैं। इनके समता में रहने पर व्यक्ति स्वस्थ रहता हैं लेकिन जब ये तीनो विकार एक साथ हो तब वह स्थिति सन्निपातिक होती है जो अत्यन्त गंभीर, घातक व असाध्य होती है। आयुर्वेद का एक अंग शल्य तंत्र है जिसकी उन्नति सुश्रुत काल में हुई थी। शल्य चिकित्सा दोष, धातु, मल के अवांछनीय संकलन को शल्य क्रिया द्वारा हटाना ही नहीं अपितु वरन रोग की परीक्षा तथा शल्योपचार पूर्व आरंभिक तैयारी और उसके बाद की देखभाल करना भी है।वैदिक आर्यो ने अनेक प्राकृतिक शक्तियों को देवत्व की श्रेणी में रखा और उनके प्रभाव को बीमारी का कारण यानिवारण माना। ऋग्वेद मे एक

स्थान पर जल को अमृत कहा गया है और उसकी रोग–निवारण क्षमता की प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार विभिन्न जड़ी–बूटियाँ नाना प्रकार की व्याधियाँ दूर करती हैं। सबसे अधिक महत्व वनस्पतियों के राजा 'सोम' को दिया गया है, जिसके सेवन से दीर्घायु, अनन्त शक्ति व क्षमता प्राप्त होती है।

बीमारियाँ व दुर्घटनाएँ तक अलौकिक कारणों से माने गए हैं, लेकिन कुछ स्थानों पर बीमारी के स्वाभाविक कारणों का भी उल्लेख हुआ है। बीमारी 'अभ्रज' (बादल या नमी), 'वाजत'(हवा) और 'सुष्मज'(शुष्कीकरण) इन तीन में से किसी एक के कारण होती है। (अथर्ववेद 1.12.3)। शुष्क या आग्नेय तत्व हेतु 'पित्त' शब्द का उल्लेख अथर्ववेद में अन्य स्थान (17.3.5) पर हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में जलीय तत्व हेतु श्लेष्मा शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में आ 'त्रिधातु' के उल्लेख को सायणाचार्य, विल्सन, कॉडियर व पार्थियर ने आयुर्वेद के 'त्रिधातु' के साथ जोडा है। लेकिन फिलिओजेट आदि ने ऐसी मान्यता स्वीकार नहीं की है।

बीमारी 'क्षेत्रीय' (जन्मजात) या संक्रमण द्वारा ऋतु बदलने से (विशेषकर तक्मन बुखार में) और कृमि द्वारा भी होती है। इसे मंत्रों, यज्ञ, देवताओं की स्तुति द्वारा ठीक किया जा सकता है। लेकिन अनेक स्थानों पर जडी–बूटियों द्वारा बीमारियाँ दूर करने का उल्लेख हुआ है। बीमारी को दूर करने के लिए कई बार एक ही श्लोक में तंत्र–मंत्र करने और जड़ी–बूटी का सेवा करने का उल्लेख हुआ है।यह कोई अनोखा तरीका नहीं था। अन्य सभ्यताओं में भी हम बीमारी ठीक करने के लिए हर प्रकार से मानसिक व भौतिक दोनो धरातल से बीमारी से जूझने का उल्लेख पाते हैं। जैसे–जैसे औषधि की क्षमता पर विष्वास होता गया, चिकित्सा से ओझाई तत्व कम होते चले गए।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 40–97 में औषधियों की स्तुति की गई हैं इसे औषधिसूक्त कहा जाता है। इसमें विभिन्न औषधियों के रंगरूप तथा प्रभावों का वर्णन किया गया है।। 'यक्ष्मा' को दूर करने केलिए भी ऋग्वेद में अनेक सूक्त प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद के 10.161 में ' यक्ष्मा' रोग के लिए राजयक्ष्मा शब्द का प्रयोग किया गया है। 10.163 में राजयक्ष्मा रोग की निवृति के उपायों के साथ–साथ शरीर के अनेक अवयवों का भी वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के लगभग 30सूक्त अथर्ववेद में प्रयुक्त अभिचारात्मक सूक्त की भाँति है। इनमें से कुछ रोगों के उपचार करने में, कुछ दुःस्वपनों और अपषकुनों के प्रभाव दूर करने के, सपत्नीमर्दन के, राक्षसों को नष्ट करने व गर्भ की रक्षा इत्यादि के महत्वपूर्ण मन्त्रों की प्राप्ति होती है। 'मन आवर्त्तन' सूक्त (10.58) में किसी व्यक्ति के मन को पुनः वापिस लौटाने के लिए प्रार्थना इस प्रकार की गई है–

यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आवर्त्तयामसीह क्षयाय जीवसे।।

मृत्युशैया पर पड़े हुए रोगी की जीवन की रक्षा के लिए भी 10.58 और 10.60 में प्राप्त होते हैं। वैदिक आर्यो द्वारा 'वरूण' प्राकृतिक व्यवस्था का भी शाश्वत रक्षक देवता के रूप में स्वीकार्य हैं। वरूण के पास सैकड़ों उपचार हैं जिनसे वह मृत्यु को भी दूर भगा देता है। इसलिए पुण्यात्मा लोग स्वर्ग लोक में वरूण तथा यम को देखने की इच्छा करते है–

उमा राजाना स्वधया मदन्तायमं पश्यसि वरूणं च देवम्
(ऋग्वेद 10.14.7)

अर्थर्ववेद चिकित्सा शास्त्र का जन्मदाता माना जाता है, इसे भिषग्वेद भी कहा जाता है। इसमें अनेक रोगों का उल्लेख हुआ है। जैसे, ऐलव (आँख की बीमारी), अलजि(आँख का सूजना), अक्षत (फेफडों की वृद्धि या नासूर), अपचि (गण्डमाला), अर्ष (बवासीर), आश्रव(मवाद पड़ना), बलास (गलषेध), हरिमा (पीलिया), हृदय रोग, हृदयोत(हृदय में गडबड़ी),जायान्य(एक प्रकार का सूखा रोग), कर्णषूल, काषिक (काली खांसी), किलास(कोढ), कुष्ठ (त्वचा का विकार), राजयक्षा(तपेदिक), यक्षा (सूखा रोग), क्षीरशक्ति (सिरदर्द), शीर्शमय(सर की बीमारी), तक्मन(बुखार), उदर (जलोदर), विसर्प(चर्म रोग),विसल्यक (तंत्रिका शूल),विष्कन्ध (गठिया) आदि। अथर्ववेद में जहाँ इतने रोगों का उल्लेख है, वहीं अनेक औषधियों का भी विवरण मिलता है, जैसे–पिप्पली (घावों में लाभकर), प्रष्निपर्णी(बाद में सुश्रुत में इसे गर्भपात बचाने हेतु प्रयुक्त किया है),रोहिणी या अरून्धति (टूटी हड्डी को जोड़ने में), 'लाक्षा' या 'सिलाची' (अरून्धति के समान) आदि।अथर्ववेद के दषम काण्ड में दूसरे सूक्त– पार्ष्णि सूक्त– के प्रथम आठ मंत्रों में मानव शरीर की अस्थियों का उल्लेख मिलता है। पार्ष्णि, गुल्फ, अंगुलि, उच्छलंख, प्रतिष्ठा, अष्ठवत् जड्ध, श्रोणि, उरू, उरस, ग्रीवा, स्तन, कफोड़,स्कन्ध, पृष्टि, असं, ललाट, ककाटिका, कपाल, हन्वोःचित्य।

शतपथ ब्राह्मण में शरीर को अग्निकुण्ड़ माना है और जिस प्रकार वेदी में 360 ईंटें लगती है उसी प्रकार शरीर में 360 हड्डियाँ है। इसी प्रकार शतपथ में ही एक स्थान पर शरीर की तुलना संवत्सर से की गई है, संवत्सर में 360 दिन व 360 रात होती है, इसी प्रकार शरीर में 360 हड्डियाँ व उनकी 360 मज्जाएँ होती है। अथर्ववेद में बच्चे के जन्म का वर्णन है तथा प्रसव में कठिनाई आने पर *मेहन* (जन्मनली), *योनि* (गर्भ) तथा *बादीनक* (जोडने वाली नलियों) की शल्य क्रिया का सुझाव दिया गया। इसी प्रकार अन्य प्रकार की शल्य क्रियाओ का उल्लेख भी हुआ है, फोडे, हड्डी टूटने, तीर के शरीर में टूटकर घुस जाने, घायल आँख को निकालने में शल्य क्रिया का प्रयोग किया गया है। इसी तरह पेषाब रूक जाने पर शलाका का प्रयोग करने की सलाह दी गई है।

कायाकल्प करने का विचार पहली बार ऋग्वेद में ही मिलता है। अथर्ववेद के अनुसार चिकित्सा विज्ञान का लक्ष्य 'आयुष्याणि' व 'भेषज्याणि' दोनों है। आयुष्याणि का अर्थ हुआ भोजन व स्वच्छता से शरीर को रोग निरोधक बनाना। इसके लिए दूध, सुरा, मधु (शहद), चावल आदि के गुणों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

जहाँ संहिताओं में चिकित्सा संबंधी ज्ञान बिखरे व अनजाने में व्यक्त हो गए लगते है, वहीं उत्तर वैदिक साहित्य में क्रमबद्धता एवं उत्पत्ति व निहित कारणों पर विचार प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ। जीव–अजीव की रचना, उनकी जैविक क्रियाएँ, शरीर का वातावरण से सम्बन्ध, जीवित शरीर में जीवनीय व उदेश्यपरक शक्तियों की प्रकृति आदि पर चिंतन किया गया है। पृथ्वी, अपस्, ज्योति, आकाष ही शरीर की रचना करते हैं और ये ही ब्रह्माण्ड की रचना में है। जीवन की अभिव्यक्ति उत्पत्ति के तीन संभव प्रकार से हैः अण्डज, जरायुज और स्वदेज। मानव शरीर में पाँच प्रकार की वायु (प्राण) की कल्पना की

गई है। छन्दोग्य उपनिषद् में न सिर्फ श्वास के प्रकारो का वरन् मानव शरीर में चिंतन व ऐन्द्रिक विषयक प्रक्रियाओं के मध्य एक क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। मनुष्य के शरीर में 100 धमनियाँ, 1000 षिराएँ तथा 10,800 पैसस (मांशपेशियाँ) हैं (अथर्ववेद 1.17.1: 6.90.2)। उत्तरवैदिक काल में भी दूध व दूध से बनने वाले पदार्थो के महत्व को बढ़ा–चढ़ा कर पेष किया गया है। पीलिया में दूध के साथ इमली का प्रयोग का उल्लेख हुआ हैं, बच्चों व गर्भवती स्त्रियों के लिए ताजा मक्खन और व्यस्कों हेतु घी के सेवन की सलाह दी गई है।

'गर्भ उपनिषद्' में गर्भकाल के दौरान षिषु में होने वाले परिवर्तनों, शरीर क्रिया, छः प्रकार के स्वाद, सात शारीरिक तत्व (रक्त, मांस, वसा, हड्डी, मज्जा, वीर्य तथा संयोजी ऊत्तक) तथा तीन अपचय पदार्थ (विष्ठा, मूत्र, स्वेद) का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। लेकिन 'गर्भ उपनिषद्' को प्राचीन काल का नहीं माना जाता है। यदि ऐसा है तो भी उत्तर वैदिक काल में पूर्ववर्ती ज्ञान को क्रमबद्ध व एक वैचारिक ढांचे में रखने का प्रयास आरंभ हो गया था।

रूद्र को स्वास्थ्य का भी देवता कहा गया है। उसके पास विषेष औषधियाँ हैं। औषधियों के लिए जलाश एवं जलाशभेषज शब्दों का प्रयोग वैदिक मन्त्रों में प्राप्त होता हैं। रूद्र से प्रार्थना भी की गई है कि आप हमें बाह्य और आभान्यतर दोनों प्रकार के रोगों से मुक्त कीजिए। विषूचीःअमीवाः विचातयस्व (ऋ0, रूद्रसूक्त–2/33,02 मंत्र)

इसी तरह रूद्र से प्रार्थना की है कि आप हमें अपनी कल्याणप्रद और शान्तिप्रद औषधियाँ प्रदान करे, हमारे पुत्र पौत्रादि को भी औषधियों से युक्त कीजिए क्योंकि मैं आपको एक कुषल वैध के रूप में सुनता आया हूँ।

'अष्विनौं' कुशल चिकित्सक तथा स्वर्ग के वैद्य हैं। ये युग्ल देवता व्याधियों को दूर करने,नवयौवन प्रदान करने तथा नये अंगों की रचना करने में समर्थ हैं। ये अपनी औषधियों से रोगों को दूर करते है तथा अन्धे, अपंग, रूग्ण व्यक्तियों को स्वास्थ्य प्रदान करते है। इन्होंने जीर्णषीर्ण, च्यवन ऋषि को नौजवान बना दिया। (ऋक् 1.116.10) विष्पला की टाँग कट जाने पर उसे लोहे की टाँग प्रदान कर दी। (ऋक् 1.116.15) तथा ऋज्राश्व को पुनः दृष्टिदान दे दिया (ऋ.1.116.16), बन्धया गाय को दुधारू बनाया (ऋ. 1.116.22), नपुंसको की पत्नियों को भी संतान प्रदान कर दी (ऋ. 1.116.13) इत्यादि।

'सोम' मूजवत पर्वत पर उत्पन्न होने वाला बताया हैं। वैदिक ऋषियों ने यह माना कि (Poppyseed) खसखस द्वारा अनेक रोग ठीक किये जा सकते है। खसखस को भैषज्यमयी शक्तियों से युक्त स्वीकार किया गया हैं जैसे– यदि खसखस को दूध के साथ मिश्रित कर गर्मियों में गर्मी के प्रभाव से बचने के लिए तथा शीत ऋतु में खसखस घी के साथ मिश्रित कर सेवन करने से शीत ऋतु से बचाव संभव है। ऋग्वेद में अष्वनीकुमार से टूटे पैर को जोड़ देने की प्रार्थना की गई है। शरीर के
भग्न अंगों को कृत्रिम साधनों से ठीक करने का भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में विभिन्न रोगों और उनके उत्पादक कीटाणुओं का वर्णन मिलता हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. ऋग्वेद
2. अथर्ववेद
3. पाण्ड्ेय देवेन्द्रनाथ, वैदिक सूक्त संकलन।
4. शतपथ ब्राह्मण त्रिपाठी रूपनारायण,भारतीय संस्कृति के मूल तत्व।